International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 19-10-2021, Accepted: 05-11-2021, Published: 20-11-2021
Volume 7; Issue 6; 2021; Page No. 25-27

प्रेमचन्दः मानवता के महान शब्दकार

डॉ0 ऋचा सुकुमार
एसोसिएट–प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग, हेमवतीनन्दन बहुगुणा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लालगंज, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
प्रेमचन्द हिन्दी ही नहीं, सम्पूर्ण भारत वर्ष के सुप्रसिद्ध साहित्य– स्रष्टा है जिन्होंने मामूली, अनाम, अधाम आदमी को अपनी सर्जना का केन्द्रिक सरोकार बनाया । निम्न और निम्न – मध्यवर्गीय अनगिन बेनाम, बेचेहरा, बेपहचान लोगों को उन्होंने नाम दिया, रूप दिया, चेहरा दिया, पहचान दी, प्रतिष्ठा दी । जैसे अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में प्रेमचन्द अकृत्रिम और सहज थे, वैसे ही अपने साहित्य– कर्म और साहित्य– चिन्ता में भी । मानवता की महनतम सच्चाई उनके साहित्य के प्रत्येक शब्द में मुखरित है और उनके साहित्य की महनीयता का रहस्य है । इस शोध आलेख में उनके इसी स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है ।

मूलशब्दः प्रेमचन्द, उपन्यास– सम्राट, साहित्य– स्रष्टा, सरल–सपाट, मानवीय संवेदना, अनूठे कलमकार

प्रस्तावना

प्रेमचन्द वस्तुतः मानवतावादी साहित्यकार थे । वह आम–आदमी के प्रबल पक्षधर जीवन के तमाम संघर्षों से जूझते, पददलित अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे । प्रेमचन्द का सम्पूर्ण साहित्य आदर्श और यथार्थ का अनोखा संगम है । प्रेमचन्द अपनी हर रचना इतने समर्पित भाव से रचते है कि पात्र जीवंत होकर पाठक के हृदय में धड़कने लगते हैं। वास्तविकता को अपनी दृष्टि से रच–रच कर वह जनता के सम्मुख रखते जाते हैं । इस सम्बन्ध में जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' का मानना है – '' प्रेमचन्द के उपन्यास भारत की उन गम्भीर समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं जिनका सम्बन्ध एक मात्र भारत के ही हितों से नहीं, सारे संसार के हितों से है।' [1]

प्रेमचन्द का स्पष्ट, सुविचारित अभिमत है कि उत्कृष्ट साहित्य वही है जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की ऊँचाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और संघर्ष बेचैनी पदा करें, सुलाये नहीं क्योंकि सोना मृत्यु का लक्षण है । वह इसलिए कि सुख–चैन से मुटियाते हुए जिन्दगी गुजारना आदमी का उद्देश्य नहीं । मनुष्यत्व को ऊपर उठाना और मनुष्य के मन में ऊँचे विचार पैदा करना ही सच्चे आदमी और श्रेष्ठ साहित्य का कर्त्तव्य है । अगर यह नहीं है तो आदमी और पशु दोनो बराबर हैं और जिसके हाथ में भगवान ने कलम और कलम में तासीर दी है, उसका कर्त्तव्य तो और बढ़ जाता है । डॉ0 रामविलास शर्मा ने प्रेमचन्द की रचनाधर्मिता के सम्बन्ध में लिखा है – ''प्रेमचन्द ने हमारी समस्याओं की छानबीन की है– जीवन की कटुता का सामना किया है, इसीलिए निराशावादी न हो कर जब वह हमारे सामने एक आदर्श रखते हैं, तब रूखे से रूखे आलोचक के निकट भी उनका आदर्शवाद क्षम्य हो जाता है । नये लेखकों को प्रेमचन्द से सीखना है कि जीवन के कितने अंगों का विस्तृत ज्ञान उन्हें प्राप्त करना है और परिणाम, नहीं तो कम से कम समस्या को किस प्रकार यथार्थवादी ढंग से साहित्य में पेश करना चाहिए । [2]

प्रेमचन्द के लिए साहित्य रेशमी परिधान और खूबसूरत मेकअप नहीं है जिसे देखकर सामने वाले व्यक्ति की ऑखे संभ्रम से भर जायें । वह तो इसके – उसके, हमारे–आपके, सबके बीच की, आपस की सह–चेतना है जो सामने वाले को उजाला देती है, उँचाई देती है और अग्रोन्मुख बनाती है और साथ साथ मरना – जीना सिखाती है । भीष्म साहनी ने अपने लेख 'प्रेमचन्द की याद में' लिखा है – 'प्रेमचन्द के लिए साहित्य सस्ते मनोरंजन की चीज नहीं था । वह एक बड़ा सशक्त माध्यम था, जीवन को बदलने का, सामाजिक विसंगतियों के प्रति पाठक को सचेत करने का, न्याय और समानता के महान आदर्शों के लिए संघर्ष की प्रेरणा देने का । जिस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रेमचन्द ने चर्चा की थी, उसके एक छोर पर समाज का कटु यथार्थ था, उसकी विसंगतियां थीं, दूसरे छोर पर मानव कल्याण की भावना से ओत प्रोत वे महान आदर्श थे, जिनकी ओर वह यथार्थ को ले चलना चाहते थे ।' [3]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में, कहानियों में जो कुछ भी कहा, जो कुछ भी लिखा उसमें नया कुछ भी नहीं, असाधारण होने का तो सवाल ही नही। सब कुछ चिर परिचित है, वही सुख दुःख जो हम नित्य अनुभव करते है, वहीं आशाएं – आकांक्षाएँ जिससे हम प्रेरित और चालित होते हैं । वस्तुतः उन्होंने साधारण कथा, मनुष्य की साधारण घर–घर की कथा, हल–बैल की कथा, दीन–दुःखी की कथा, खेल–खलिहान की कथा, निर्झर, वन, पर्वत, गॉव, नगर की कथा सब तक इस प्रकार पहुँचायी कि वह आत्मीय तो थी ही, नवीन भी हो गयी । भीष्म साहनी ने प्रेमचन्द की प्रतिनिधि कहानियों की भूमिका में इस ओर ध्यान आकर्षित किया है ''हम किसी लेखक की इस या उस रचना से प्रभावित होकर उसे ऊँचा स्थान नहीं देते, रचनाओं के साथ उस रचनाकार का पूरा व्यक्तित्व जुड़ा होता है, उसी व्यक्तित्व में से ये रचनाएँ जन्म लेती है । शायद अंततः किसी लेखक को पढ़ना उसकी आत्मा तक पहुँच पाने की यात्रा ही है । ..... जहॉ उनकी रचनाएँ हमारे सामने जीवन का प्रामाणिक जीवंत चित्र प्रस्तुत करती है, सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के प्रति हमे सचेत करती हैं । वहीं वे हमारे दिल में सद्भाव जगाती है, हमारे मस्तिष्क को झकझोरती है, हमें जिन्दगी को देखने का नजरिया देती है ''[4]

प्रेमचन्द ने एक जगह नहीं, अनेक जगह, इस आशय की बात लिखी है कि कहानी उपन्यास जन–साधारण के लिए बने हैं अपनी इस धारणा को उन्होंने जानबूझकर इस रूप में रूपान्वित किया । चाहे वह 'दो बैलों' की कहानी हो, चाहे बच्चों की 'ईदगाह', चाहे 'पूस की रात' में अपने कुत्ते के साथ कॉपता, आग तापता और क्रीड़ा करता हल्कू किसान हो, चाहे 'कफन' के पैसों पर शराब पीकर नाचते हुए बाप–बेटों का करूणाडम्बित गान हो,

चाहे धैर्यवान, संघर्षरत 'होरी का निरूपाय दान' हो, चाहे आत्मग्लानि की अग्नि में मंद–मंद जलती हुई 'निर्मला' – सर्वत्र एक ऐसी गहरी मानवीय दया की अनुभूति होती है जो समूचे हिन्दी साहित्य में केवल प्रेमचन्द में मिलती है । आम–आदमी के जीवन के साथ तालमेल बनाते हुए प्रेमचन्द ने जो रचा वह हिन्दी साहित्य के लिए एकदम नया था । डॉ0 रामविलास शर्मा ने प्रेमचन्द की रचनाधर्मिता के सम्बन्ध में लिखा है – हिन्दी में किसानों की समस्याओं पर ज्यादा उपन्यास लिखे ही नहीं गये, जो लिखे भी गये हैं उनमें प्रेमचन्द की सूझ–बूझ का अभाव है । '' [5]

इसी सन्दर्भ में उन्होंने आगे लिखा–''उन्होंने उस धड़कन को सुना जो करोड़ों किसानों के दिल में हो रही थी उन्होंने उस अछूते यथार्थ को अपनी कथा का विषय बनाया, जिसे भरपूर निगाह से देखने का हियाव ही बड़ो–बड़ो को न हुआ था। ''[6]

प्रेमचन्द का सम्पूर्ण साहित्य इतना विशाल और विस्तृत है कि उसमें समूचा एक युग समा गया है । इस साहित्य को जन–जन तक पहुँचाने का माध्यम निस्सन्देह भाषा है, उनकी अपनी शैली है । उनकी अद्‌भुत शैली हमें उनके पात्रों के साथ एकमेक कर देती है । उनके कथा–साहित्य के सैकड़ो पात्र मर्मस्पर्शी भावनाओं का तरल प्रसार है तो दर्जनों अविस्मरणीय चरित्र संवेदना की साकार प्रतिमा है । इस सन्दर्भ में रामदरश मिश्र ने लिखा है – ''प्रेमचन्द में भारतीय जीवन का सच्चा दर्द बहता था और वे गॉव के जीवन के समस्त दुःख दर्द के दृष्टा ही नहीं भोक्ता भी थे इसीलिए उनके कथा साहित्य में तत्कालीन ग्राम परिवेश अपने सारे बाहरी विस्तार और आन्तरिक जटिलताओं तथा गहराईयों के साथ उद्‌घाटित हुआ है ।'' [7]

प्रेमचन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व में सर्वत्र मानवीय संवेदना का अनोखा पुटपाक दिखाई पड़ता है । उन्होंने कोटि–कोटि मामूली जनों के साथ ऐसी तादात्म्यता कर ली थी कि उन्हें देखकर काव्य के उस छायावादी काल में कोई अपरिचित किसी भी तरह से उन्हें 'साहित्यकार' मानने को तैयार नहीं हो सकता था । असाधित गॅवार मूँछों से झबराया देहाती – दहकान चेहरा, घुटने तक की उटुंग मटरंग घोती, बिना फीते का बदामी किरमिच का घूसर जूता जिसमें से पॉचवीं नन्ही अंगुली आवरण फोड़ कर बाहर को झॉकती हुई, गाढें का गुजमुजाया देहाती – छाप कुरता । सचमुच वे निहायत मामूली लगते थे । लेकिन उनमें मामूलीपन या टुकाचीपन न था । उनका साधारण चेहरा अपनी आन्तरिक आभा से दैदीप्यमान दिखाई पड़ता था । उनके व्यक्तित्व की सादगी बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये एक पत्र से प्रकट होती है – ''मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं है । इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य–संग्राम में विजयी हों । धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही । खाने भर को मिल ही जाता है । मोटर और बॅगले की मुझे हविस नहीं । हॉ, यह जरूर चाहता हूँ कि ऊँची कोटि की दो–चार पुस्तके लिखूँ । मुझे अपने दोनों लड़कों के विषय में कोई बड़ी लालसा नहीं है । यही चाहता हूँ कि वे ईमानदार और पक्के इरादे के हो । विलासी, धनी, खुशामदी सन्तान से मुझे घृणा है । मैं शान्ति से बैठना भी नहीं चाहता । साहित्य और स्वदेश के लिए कुछ – न – कुछ करते रहना चाहता हूँ । हॉ, रोटी–दाल और तोला भर घी और मामूली कपड़े मयस्सर होते रहे ।'' [8]

प्रेमचन्द की मानवता बहुत ऊँचे दर्जे की थी । आज यह शब्द इतना हल्का हो गया है कि इसे जितना भी चाहें उछाल सकते हैं । पर प्रेमचन्द के काल में यह न तो इतना हल्का ही था, न इतना प्रचलित । उस समय मानवतावादी होना एक कठिन तपस्या थी, एक बलिदान था जो तब की परिस्थितियों में और भी कष्टसाध्य था । पर प्रेमचन्द की अन्तरतम गहराइयों में इस मानवता के अलावा जीने का कोई प्रयोजन, कोई तर्क नहीं था । यह मानव – प्रेम उनके अस्तित्व का एक मात्र सम्बल था । उनका सारा जीवन अपने आदर्शों की स्थापना और पुनः स्थापना में बीता । उनका व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन समान था । उनके व्यक्तित्व में कहीं किसी प्रकार की विसंगति न थी । मानवता को वे सच्चे हृदय से प्रेम करते थे । इसमें किसी प्रकार का दिखावा न था । मानवता की गहनतम सच्चाई उनके साहित्य के प्रत्येक शब्द में मुखरित है और उनके साहित्य की महनीयता का रहस्य है । उनका स्पष्ट मानना था – ''साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है उसका दरजा इतना न गिराइये । वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है ।''[9]

प्रेचमन्द के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उनकी पारदर्शी सच्चाई है जो उनके साहित्यसर्जक व्यक्तित्व की सबसे बड़ी थाती है । उनका व्यक्तित्व ही उनके साहित्य में मुखर और मूर्त हो उठा है । इस सम्बन्ध में डॉ0 रामकुमार वर्मा ने लिखा है – ''चाहे अछूत वर्ण की समस्या हो या असमान विवाह, जाति भेद, वेश्या–जीवन, साम्प्रदायिकता आदि की समस्या हो । विभिन्न पात्रों की पीड़ा को प्रस्तुत करने के साथ – साथ प्रेमचन्द यह सकारात्मक पक्ष भी उभारते हैं कि समाज की व्यापक समानता एवं एकता के लिए पारस्परिक सहन– शीलता, सहानुभूति, मानवीय उदारता और सामान्य प्रगतिशील दृष्टि का होना नितांत आवश्यक है ।'' [10]

प्रेमचन्द अपने 'सरल–सपाट' जीवन में निरन्तर कर्मनिरत–रचनाशील रहे । उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता से ऐसे यथार्थवादी आदर्श का प्रतिपादन किया है जो प्रत्येक पाठक की आत्मा का परिष्कार और बुद्धि का निखार करता है । व्यक्ति को जीवन संघर्ष में जूझने की प्रेरणा और अदम्य साहस प्रदान करता है । इसी सन्दर्भ में 'डॉ0 रामविलास शर्मा' ने लिखा है – ''आने वाले दिनों में हमे महान लेखक प्रेमचन्द का साहित्य संघर्ष में प्रेरणा देगा, विजय में हमारी आस्था को दृढ़ करेगा । हमारे साहित्य की और हमारे राष्ट्रीय जीवन की सच्चाई एक दिन अवश्य सारे अन्धकार की चीरकर दुनिया में अपनी ज्योति का उजाला फैला देगी ।'' [11]

प्रेमचन्द का साहित्य गहरे मनोमार्जन, उदार आत्मोन्नयन और विशद अन्तःप्रकाश प्रदान करने वाला है । उनकी कथा कहानियॉ, उनके उपन्यास मन बहलाने के निठल्ले साधन नहीं है । वे शब्दों के कारीगर और कल्पना के बाजीगर नहीं, जीवन–जगत के यथार्थ चितेरे, आदमी के पैरोकार और आदमयित के पक्षधर हैं । वे अच्छाई का प्रसार और मूल्यों का प्रचार करते हैं । कमरे में बन्द, कुर्सी पर आसीन या तख्त पर विराजमान होकर वे 'किताबी' –किताबों–पर–किताबें तैयार करते जाने वाले लिक्खाड़ नहीं, जिन्दगी की सर्दी से सिकुड़े और ऑच से तपतें हुए, हाड़–मांस के, तन–मन आत्मा के सुख–दुःख की सच्ची तर्जुमानी करने वाले, यथार्थवादी कलमकार है ।

प्रेमचन्द को शरच्चन्द्र –जैसे महान् स्रष्टा ने 'उपन्यास–सम्राट' कहा । वे अपने समय के शिरोमणि साहित्यस्रष्टा ओर सहज संवेदनमय श्रेष्ठ मानव थे । उनके होरी –धनिया अपनी घूसर–विर्वण काया और अमलिन, अकपट, सरल–सपाट मन के साथ विश्व की अग्र–पांक्तेय पात्र गैलरी में अमन्द भाव से सर्वकाल तक विभासित रहेगें । प्रेमचन्द जैसे सहज मानव–संवेदी साहित्यसर्जक संसार में विरल ही है ।

लगातार तीस वर्षों से संघर्षमय, श्रमपूर्ण रचनाकाल में प्रेमचन्द ने कहानी–उपन्यास, कुल मिलाकर हजारों पृष्ठों का साहित्य लिखा है जिसे डॉ0 नामवर सिंह के शब्दों में निःसंकोच आधुनिक भारत का महाभारत कहा जा सकता है । जीवन और साहित्य दोनों में प्रेमचन्द समान गतिशील थे और यही गतिशीलता उनकी साहित्य–संसृति की आत्मा है । उन्होंने सच्चे अर्थों में साहित्य – साधना की । उनका अवदान अविस्मरणीय है ।

संदर्भ सूची

1. 'प्रेमचन्द की उपन्यास कला', जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', वाणी प्रकाशन, छपरा दिसम्बर 1933, पृ0–177
2. 'प्रेमचन्द', डॉ राम विलास शर्मा, प्रथम संस्करण 1941, प्रथम राधाकृष्ण संस्करण–1994 (आदर्श और यथार्थ) पृ0–47
3. 'प्रेमचन्द व्यक्तित्व और रचना दृष्टि' सम्पादक 'दयानन्द पाण्डेय' ('भीष्म साहनी' के लेख 'प्रेमचन्द की याद में') भावना– प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ0सं0–24
4. 'प्रेमचन्द : प्रतिनिधि कहानियॉ' (भूमिका) भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 नई दिल्ली पहला संस्करण 1988, पृ0सं0–6
5. 'प्रेमचन्द और उनका युग', रामविलास शर्मा' राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1993 पृ0सं0–44
6. वही, पृ0सं0–45
7. 'प्रेमचन्द : व्यक्तित्व और रचना दृष्टि' सम्पादक 'दयानन्द पाण्डेय' ('रामदरश मिश्र' के लेख 'प्रेमचन्द साहित्य का ग्राम परिवेश और चेतना' से) भावना–प्रकाशन दिल्ली, संस्करण–1985, पृ0सं0–76
8. प्रेमचन्द द्वारा बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये 3 जून 1930 के एक पत्र से उद्घृत ।
9. 1936 में लखनऊ में हुए प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन में प्रेमचन्द द्वारा दिये गये अध्यक्षीय भाषण के अंश ।
10. 'प्रेमचन्द और यथार्थवादी परम्परा' डॉ0 राम कुमार वर्मा – पृ0सं0– 75
11. 'प्रेमचन्द' 'डॉ0 राम विलास शर्मा', प्रथम राधाकृष्ण संस्करण : 1994 पृ0सं0–38